रीमा अग्रवाल

बनाम

अनुपम व अन्य

जनवरी 08, 2004

(दोराईस्वामी राजु एवं अरिजित पसायत जे.जे.)

धारा 304 बी, 307 व 498 ए भारतीय दण्ड संहिता पति ने अपनी पहली पत्नी के जीवनकाल में पीडिता से विवाह किया- पति, उसके माता पिता व भाई ने पीडिता से दहेज की मांग कर प्रताड़ना कारित की- इन अपराधो के लिए अभियोजन- अभियोजन पक्ष पहली शादी का विधिवत समाप्त होना स्थापित नही कर पाया, विचारण न्यायालय द्वारा दोष मुक्त किया गया, उच्च न्यायालय द्वारा अस्पष्ट/रहस्यमयी आदेश से पिटीशन फाईल करने की अनुमति व निगरानी को खारिज किया- अपील पर विनिश्चित कियाः धारा 498 ए व 304 बी को लाने का व्यवस्थापिक उद्देश्य व लक्ष्य के दृष्टिकोण में पति का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति को अलग करना नही है जो ऐसी स्त्री से विवाह की संविदा का प्रदर्शन करना है अथवा साथ में रहता है और इससे वैध विवाह के प्रावधान की पूर्वधारणा नही माना जाता है-

उच्च न्यायालय का आदेश विधि सम्मत नही है और मामला वापस उच्च न्यायालय को भेजा गया।

दहेज निषेध अधिनियम 1961- धारा 2 और 4- दहेज क्षेत्र- विनिश्चित किया गया धन की मांग, सम्पति या मूल्यवान प्रतिभूति विवाह के प्रतिफल के रूप में विवाह पूर्व विवाह के समय व विवाह के बाद दिये गए- मामूली मांग भी उसमें सम्मिलित है इसी प्रकार दूल्हा या दूल्हन को स्वेच्छया परम्परागत तरीके से माता पिता या दोस्तो व रिश्तेदारो द्वारा प्यार, लगाव व सम्मान के रूप में दिये गए उपहार शामिल नही है इसके अतिरिक्त प्रस्तावित विवाह भी इसमें शामिल है।

अपीलार्थी पत्नी प्रत्यर्थी पति से उसकी पहली विवाहिता पत्नी के जीवनकाल में विवाह करती है विवाह के बाद प्रत्यर्थी के माता पिता व भाई अपीलार्थी को दहेज के लिये प्रताड़ित करने लगे। घटना के दिन उन्होने उसके जीवन को समाप्त करने के लिये कुछ खाने के लिये मजबूर किया। उसके बाद अपीलार्थी को अस्पताल में भर्ती करवाया जहां उसने अनुसंधान अधिकारी को यह सब बताया। धारा 307 व 498 ए का आरोप तय किये गए। अभियोजन यह साबित करने में असफल रहा कि प्रत्यर्थी का पहला विवाह विधित भंग हो गया था। विचारण न्यायालय ने अभिनिश्चित किया

कि धारा 307 व धारा 498ए के आरोप स्थापित नही किये गए व आरोपी को दोषमुक्त किया गया। राज्य ने अपील की याचिका पेश करने की अनुमति के लिये प्रार्थना पत्र पेश किया। उच्च न्यायालय ने याचिका को खारिज किया। आपराधिक निगरानी भी खारिज की गई। परिणामतः वर्तमान अपील की।

अपीलार्थी पत्नी का तर्क रहा कि उच्च न्यायालय ने अपील याचिका पेश करने के प्रार्थना पत्र और निगरानी के प्रार्थना पत्र को भी अस्पष्ट आदेश से न्यायिकतः निस्तारित नही किया है।

प्रत्यर्थी पति ने तर्क दिया कि शादी एक महिला व पुरूष का वैधानिक मिलन है जिसमें वे पति पत्नी बनते है। कानून की नजर में उसे उस महिला तक विस्तारित नही किया जा सकता है जिसकी शादी अमान्य है। धारा 5(1), 11 व 16 हिन्दू विवाह अधिनियम के अनुसार विधायिका ने शून्य व शून्यकरणीय विवाह की प्रासंगिकताओ/सुसंगतताओ को ध्यान में रखकर प्रावधान किये है लेकिन धारा 498ए में ऐसे लक्ष्य नही है और धारा 498ए में प्रयुक्त भाषा ''पति व पत्नी के नातेदार हैं''

न्यायालय ने अपील का निस्तारण करते हुए विनिश्चित किया ।

1.1 दहेज अधिनियम एक सामाजिक विधान है जो दहेज की सामाजिक बुराई के खतरे पर निमंत्रण करने के उद्देश्य से बनाया गया है यह केवल वास्तविक रूप से दहेज प्राप्त करने की ही नही वरन् सभी दहेज की मांग करने वाले को दण्डित करता है

दहेज अधिनियम के तहत ''दहेज की व्याख्या में, विधायन की इच्छा/कामना भी यही है। विधायन में दी गई परिभाषा निर्धारक घटक है। धारा 2 दहेज अधिनियम के तहत '' दहेज की परिभाषा में कोई धन सम्पति और मूल्यवान प्रतिभूति जो एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को विवाह से पूर्व, विवाह के समय या विवाह के पश्चात विवाह के प्रतिफल के रूप में संबंधित पक्षकार को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से दी जाती है या ''देने का वादा' किया जाता है। धारा 4 के तहत केवल मांग मात्र ही दहेज की बुराई में आती है। विधायन के तहत ऐसी कोई मांग विधिक मान्य दावे के लिये नही बताई गई है लेकिन वह विवाह के प्रतिफल के रूप में सन्दर्भित होनी चाहिये। इस प्रकार विवाह के प्रतिफल के रूप में दहेज निषिद्ध है फिर भी विवाह के समय व पूर्व व पश्चात स्वेच्छया परम्परागत रूप में दूल्हा, दूल्हन को दोस्तो व रिश्तेदारो के द्वारा प्यार, स्नेह या सम्मान के रूप में दिये गए उपहार दहेज अधिनियम में अभिव्यक्त दहेज की की बुराई में नही आते है जो

दण्डनीय है। इस सन्दर्भ में विवाह पूर्वधारित विवाह (किसी बात को सिद्ध किये बिना अस्तित्व युक्त मान लेना व तद्नुसार कार्यवाही करना) जहां दहेज की मांग की पूर्ति नही होने के बुरे परिणाम किसी भी रूप में घटित नही हुए हो। {387-बी, सी-38-डी}

प्रतिभारानी बनाम सूरज कुमार व अन्य ए.आई. 1985 ऐसे.सी. पेज 628

और हिमाचल प्रदेश बनाम निक्कूराम ए.आई. 1996 ऐसे.सी. पेज 67 मायने द्वारा लिखित समाज की प्रारम्भिक इतिहास पेज 319 व

बनर्जी द्वारा लिखित ''विवाह एक स्त्रीधन'' पेज 345 को सन्दर्भित किया गया।

1.2 ''दहेज'' की अवधारणा बारम्बार विवाह की अवधारणा से जुड़ी है और दहेज अधिनियम के प्रावधान विवाह के संबंध में लागू होते है यदि विवाह की वैधता स्वयं में प्रश्नगत है तो ऐसे अवैध विवाह के संबंध में दहेज की मांग को वैध रूप से मान्य नही मानना होगा फिर भी धारा 498 ए, 304 बी भा.द.स. धारा 113 बी भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 के व्यवस्थायन को लागू करने के उद्देश्य को नजरअंदाज नही किया जा सकता है जिसके लिये इस नीति को लागू किया गया था कि कुछ लोक कुरूतियां

समाज में सर्वत्र विधमान है, की पीड़ा या कष्ट के प्रभाव को कम किया जाए व नियन्त्रण में लाया जावें। केवल मात्र दिखावटी/उपदेशात्मक व अति तकनीकी मात्र नही वरन् एक निश्चित लोक उद्देश्य, सकारात्मक लाभ के लिये आवश्यक व वास्तविकता में व्याख्या करनी चाहिये इसका स्पष्ट उद्देश्य एक ऐसी महिला की प्रताड़ना से बचाना है जो किसी व्यक्ति के साथ वैवाहिक संबंधो में प्रवेश करती है और बाद में धन के लालच का शिकार बन जाती है। एक व्यक्ति वैवाहिक व्यवस्था में प्रवेश करता है मुश्किल परिस्थितियो का सामना करने के लिये वैवाहिक धूमावरण का आश्रम लेता है ऐसे में अवैध विवाह की स्थिति में दहेज का प्रश्न नही उठता है, इन प्रावधानों के उद्देश्य को समाप्त कर देगा। इस प्रकार का छिद्रान्वेषण का विधि सम्मत दृष्टिकोण एक महिला से धन की मांग को लेकर की गई प्रताड़ना को बढायेगा इसके अतिरिक्त विधायिका ने अवैध विवाह से उत्पन्न संतान का संरक्षण धारा 16 हिन्दू विवाह अधिनियम में किया है यह नही कहा जा सकता कि व्यवस्थापिका जो शून्य व शून्यकरणीय विवाह से उत्पन्न बच्चो के सामाजिक कलंक के प्रति सजग है वह ऐसी महिला जो अज्ञानतावश अथवा वैधानिक परिणामों से अनभिज्ञ होते हुए वैवाहिक संबंधो में प्रवेश करती है, की दुर्दशा की तरफ आंख मून्द लेगी यह विधायिका के आशय को आगे नही

बढायेगा यह विधायिका के महिला से वैवाहिक संबंधो में की गई दहेज की मांग की प्रताड़ना के विरूद्ध दिखाई गई चिन्ता के विरूद्ध होगा। {388-एच-389 ए.ई}

1.3 ''पति'' की अभिव्यक्ति का यह अर्थ लगाना उचित होगा ऐसे व्यक्ति को समाहित किया जावे जो वैवाहिक संबंधो में प्रवेश करता है और पति की ऐसी घोषित या नकली स्थिति के तहत संबंधित महिला के साथ क्रूरता करता है या किसी भी तरीके या किसी भी उद्देश्य के लिये उससे जबरदस्ती करता जो धारा 304 बी/498 ए सुसंगत प्रावधानो में प्रमाणित है। धारा 498 ए व 304 बी के लिये विवाह की जो कुछ भी वैधता है वह सीमित उद्देश्य के लिये है। इस प्रकार का अर्थान्वयन ज्ञात व मान्यता प्राप्त सप्रायोजन ढांचा ऐसे मामलो में प्रभाव में आने लगता है। ''पति'' की परिभाषा का अभाव विशेषतः ऐसे व्यक्ति को शामिल करता है जो दिखावटी तौर पर विवाह की संविदा करता है और ऐसी महिला के साथ रहता है और पति की भूमिका अदा करता है। पति की अवस्था का आभास करता है वह धारा 304 बी व 498 ए की परिधि से बचने का कोई आधार नही रखता है। इस दृष्टिकोण से व्यवस्थापिका का इन प्रावधानो का अस्तित्व में लाने का

लक्ष्य व उद्देश्य वस्तुनिष्ठ है व्यक्तिगत प्राथमिकताओं के आधार पर नहीं है। {389-एफ-एच, 390-ए}

रामनारायण और ओ.ऐसे. वी. एम. पी. राज्य, [1998] 3 अपराध 147 एम. पी. वृंदराला येदुकोंडालु बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [1988] सी.एल. एल.जे. 1538 [डी.बी.]; कर्नाटक राज्य बनाम शिवराज, [2000] सी.एल. एल.जे. 2741; भाऊराव शंकर लोखंडे और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य ए.आई. [1965] ऐसे.सी. 1564; इंदरून वालुंगीपोली बनाम रामास्वामी, [1869] 13 एम.आई.ए. 141; शास्त्री वेलाइडर बनाम सेम्बिकट्टी, [1881] 6 ए.सी. 364; सुरजित कौर बनाम गरजा सिंह और अन्य, ए. इ. [1994] ऐसे.सी. 135 श्रीमती यमुनाबाई अनंतराव अदव बनाम अनंतराव शिवराम अधव और अन्य, ए.इ.(1988) ऐसे.सी. 644; पंजाब राज्य बनाम भाग सिंह, [2003] 8 सुप्रीम 611, ए.पी. के मुख्य न्यायाधीश बनाम एल.बी.ए. दीक्षितुलु [1979] 2 ऐसे.सी.सी. 34; केहर सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), ए.इ. [1988] अनुसूचित जाति- 1883; जिला खनन अधिकारी बनाम टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी, जे.टी. [2001] 6 ऐसे.सी. 183; बंगाल इम्युनिटी कंपनी लिमिटेड V. बिहार राज्य और अन्य ए. आई. [1955] ऐसे.सी. 1661; गुडइयर इंडिया लिमिटेड बनाम हरियाणा

राज्य और अन्य, ए.इ. [1990] ऐसे.सी. 781; पी.ई. के. कल्लियानी अम्मा और अन्य वी.के. देवी और अन्य, ए.आई.[1996] ऐसे.सी. 1963; अमीर ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम शप्पोरजी डेटा प्रोसेसिंग लिमिटेड, [2003] 8 सुप्रीम कोर्ट 634; भारतीय रिजर्व बैंक आदि। वी. पीयरलेस जनरल फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड और अन्य [1987] 1 ऐसे.सी.सी. 424 और ऐसे. गोपाल रेड्डी बनाम ए.पी. राज्य, [1996] 4 ऐसे.सी.सी. 596, संदर्भित सी फोर्ड कोर्ट ऐसे्टेट लि. बनाम अशेर, {1949}2 ए.आई. 155 सी.ए. मायने द्वारा लिखित हिन्दू विधि और उपयोग को संदर्भित किया।

2. यद्यपि अपराध घटित हुआ, यह विचारण का प्रश्न है। उच्च न्यायालय का अपील की याचिका के आवेदन को संक्षिप्तः खारिज करना न्यायोचित नहीं है। अपील के आवेदन को खारिज किये जाने के कारण दर्शित करना आवश्यक है। कोई भी संक्षिप्त व अनौपचारिक निस्तारण न्यायोचित नहीं होगा। इस प्रकार न्यायालय का प्रश्नगत आदेश अपास्त किया और मामले को उच्च न्यायालय को न्यायिक निर्णय के लिए प्रतिप्रेषित किया। {393-सी}

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील नं. 25/2004

पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय की आपराधिक निगरानी नं. 2424/2002 का निर्णय व आदेश दिनांक 16.01.2023

ऐसे. मुरलीधर, एन.एल. गणपति- अपीलार्थी की तरफ से

मनोज स्वरूप व अजय कुमार -प्रत्यर्थी की तरफ से

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति अरिजीत पसायत द्वारा पारित किया गया। प्रार्थना स्वीकार।

विवाह के पक्षकार दाम्पत्य गांठ बांधकर आत्माओं का मिलन करने का प्रयास करते हैं जो कि पति-पत्नी के बीच में प्रेम, स्नेह, देखभाल का संबंध बनाता है। हिन्दू वैदिक दर्शन के अनुसार यह एक संस्कार है 16 अन्य महत्वपूर्ण धर्म विधियों में से एक धर्म विधि जिसका पालन किसी के जीवनकाल में किया जाना आवश्यक है। विवाह के परिणाम स्वरूप शारीरिक मिलन वंशीय संतान के लिए प्रसव आध्यात्मिक मोक्ष धार्मिक संस्कारों के पालन को यादगार बनाना है। लेकिन आवश्यक परिकल्पना दो आत्माओं का मिलन है। विवाह तीन महत्वपूर्ण कर्तव्यों का संगम है। माना जाता है जैसे कि सामाजिक, धार्मिक व आध्यात्मिक। इस अपील में जटिल पैचीदगियों का प्रश्न है, जिसमें भावी घटनाओं के परिदृश्य की भूमिका काफी कम है।

अनावश्यक विवरण हटाने के पश्चात् तथ्यात्मक स्थिति निम्न प्रकार है:-

दिनांक 13.7.1998 को टैगोर अस्पताल, जालंधर से सूचना प्राप्त हुई कि अपीलार्थी रीमा अग्रवाल को, जहरीला पदार्थ खाने के कारण भर्ती कराया गया है। अस्पताल पहुंचने पर ए.ऐसे.आई. चरणजीत सिंह ने बयान देने के लिए उसकी फिटनेस के बारे में डॉक्टर से राय ली। अपीलार्थी ने जांच अधिकारी के समक्ष कथन किया कि उसकी शादी प्रत्यर्थी संख्या 01. अनुपम से 25.1.1998 को हुई थी और शादी के बाद उसे उसके पति-प्रत्यर्थी नंबर

1, सास, ससुर और देवर (प्रत्यर्थी क्रमशः 2, 3 और 4) द्वारा पर्याप्त और अधिक दहेज लाने के लिए प्रताड़ित किया गया। यह भी खुलासा किया गया कि यह अपीलार्थी और प्रत्यर्थी नंबर 1 दोनों की दूसरी शादी है। घटना की दिनांक को सायं लगभग 5.00 बजे चारों आरोपियों ने उसे अपनी जिंदगी खत्म करने के लिए कुछ खाने के लिए मजबूर किया और उसके मुंह में जबरन कोई अम्लीय पदार्थ डाल दिया। उसे उल्टी होने लगी और बेहोशी की हालत में उसे अस्पताल ले जाया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट तदनुसार दर्ज की गई थी और अनुसंधान पूर्ण होने पर आरोप पत्र पेश किया गया था और भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "भा.द.सं.") की धारा 307 और

498-ए के तहत दंडनीय अपराधों के लिए आरोप तय किए गए थे। आरोपी व्यक्तियों ने स्वयं को निर्दोष बताया। अभियोजन कहानी को आगे बढ़ाने के लिऐसात गवाहों से का परीक्षण किया गया।

विचारण न्यायालय के समक्ष आरोपी व्यक्तियों ने दलील दी कि धारा 498-ए के तहत आरोप पूरी तरह से गलत था क्योंकि भा.दं.सं. की दोनों धाराएं 304-बी और 498-ए कथित पीड़ित महिला की अपराधी-पति के साथ वैध शादी की पूर्व कल्पना करती हैं। यह दर्शित करना आवश्यक है कि पीड़ित महिला आरोपी की वैध विवाहित पत्नी थी। चूंकि यह स्वीकार किया गया था कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी नंबर 1 की पत्नी के जीवनकाल के दौरान शादी की थी, उसकी पहली शादी का क्या हुआ यह एक रहस्य बना हुआ है। अभियोजन यह स्थापित करने में विफल रहा है कि वह कानूनी रूप से भंग कर दी गई हो। अभियोजन इस संबंध में कोई भी महत्वपूर्ण रिकॉर्ड लाने में विफल रहा, धारा 498-ए का कोई उपयोग नहीं हुआ। रामनारायण और अन्य बनाम स्टेट ऑफ एम.पी., (1998) 3 अपराध 147 एम.पी. के मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया। विचारण न्यायालय ने माना कि जहां तक धारा 307 का सवाल है, आरोप स्थापित नहीं हुए थे और धारा 498-ए के संबंध में आरोपी व्यक्तियों द्वारा उजागर की

गई कानूनी स्थिति को देखते हुए उस संबंध में आरोप भी स्थापित नहीं किया गया था। तदनुसार आरोपी व्यक्तियों को बरी कर दिया गया।

पंजाब राज्य ने अपील की अनुमति देने के लिए एक आवेदन दायर किया जिसे पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने निम्नलिखित आदेश से निस्तारित किया।

"हमने अपीलकर्ता के विद्वान वकील को सुना है और उनके सहयोग से, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों का अध्ययन किया है। हमारी सुविचारित राय में, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष को अशुद्ध नहीं माना जा सकता है और न ही कि सबूतों का तर्क विरूद्ध विवेचन था। अपील की अनुमति अस्वीकार कर गई। अपील भी खारिज कर दी गई है।"

अपील दायर करने के राज्य के आवेदन को खारिज करने के मद्देनजर, एफ आपराधिक पुनरीक्षण आवेदन अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दायर किया गया था, जो निम्नलिखित आदेशों के साथ खारिज कर दिया गया था: -

आपराधिक विविध नं. 580 एम.ए. 2002 में उसी तारीख के हमारे अलग आदेश में हमने राज्य को अपील दायर करने की अनुमति नहीं

दी है। इन परिस्थितियों में, इस आपराधिक निगरानी में कोई योग्यता/गुण नहीं है जो इसके द्वारा खारिज की गई।"

अपील के समर्थन में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपील की अनुमति के लिए आवेदन व निगरानी का निपटारा उच्च न्यायालय ने अस्पष्ट आदेश से न्यायोचित तरीके से नहीं किया। कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल हैं। वास्तव में सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है। वुंगाराला येदुकोंडालु बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1988) सी.एल.एल.जे. (डी.बी.) 1538 व कर्नाटक राज्य बनाम शिवराज, (2000) सी.एल.एल.जे. 2741 के मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय और कर्नाटक उच्च न्यायालय ने अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाया है। उनके अनुसार भा.दं.सं. की धारा 498-ए में आने वाले "पति" और "महिला" शब्दों को इस तरह से पढ़ा जाना चाहिए ताकि उस उद्देश्य को पूरा किया जा सके जिसके लिए धारा 498-ए को क़ानून में लाया गया था। रामनारायण मामले (सुप्रा) में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया प्रतिबंधित अर्थ कानून की सही स्थिति को प्रतिबिंबित नहीं करता है। दूसरी ओर, कर्नाटक और आंध्र

प्रदेश उच्च न्यायालयों द्वारा व्यक्त विपरीत दृष्टिकोण सही दृष्टिकोण को दर्शाता है।

जवाब में, प्रत्यर्थी के विद्वान वकील ने कहा कि कानून की नजर में विवाह का गठन करने के लिए पहले यह स्थापित करना होगा कि यह एक वैध विवाह था। भाऊराव शंकर लोखंडे और अन्य महाराष्ट्र राज्य और अन्य, एआई (1965) ऐसेसी 1564 पर मजबूत निर्भरता रखी गई थी। इस संदर्भ में हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (संक्षेप में 'विवाह अधिनियम') की धारा 5(1), 11 और 16 का संदर्भ भी यह तर्क दिया गया था कि वैध विवाह की शर्तों का पालन न करने की परिस्थितियाें में विवाह शून्य हो जाता है और क्रमशः शून्य और शून्यकरणीय विवाह के बच्चों को दी गई सुरक्षा स्थिति को स्पष्ट करती है कि जहां भी विधायिका शून्य या शून्यकरणीय विवाहों से उत्पन्न होने वाली भविष्य की संभावित स्थिति व घटना के लिए प्रावधान करना चाहती थी, वहां उसने विशेष रूप से वैसा किया है। यह विवाह अधिनियम की धारा 16 से स्पष्ट रूप से स्पष्ट है। भा.दं.सं. की धारा 498-ए में ऐसा कोई संकेत नहीं है। प्रयुक्त भाषा "पति या पति के नातेदार" है। विवाह एक पुरुष और महिला का पति और पत्नी के रूप में एक कानूनी

मिलन है और इसका विस्तार उस महिला तक नहीं हो सकता जिसका विवाह शून्य है और कानून की नजर में वैध विवाह नहीं है।

हिंदुओं के बीच अनुबंधित विवाह अब वैधानिक रूप से एकपत्निक बना दिए गए हैं। पहली शादी के लिए एक पवित्रता का श्रेय दिया गया है, जिसका अनुबंध कर्तव्य की भावना से किया गया था, न कि केवल व्यक्तिगत संतुष्टि के लिए। जब विवाह के उत्सव का तथ्य स्थापित हो जाता है तो इसके विपरीत साक्ष्य के अभाव में यह मान लिया जाएगा कि वैध विवाह के लिए सभी संस्कार और समारोह पूरे कर लिए गए हैं। जैसा कि 1869 से कहा आया "जब एक बार आप इस पर पहुंच जाते हैं कि वास्तव में एक विवाह था, तो कानून की नजर में विवाह होने के पक्ष में एक धारणा होगी"। (इंदरुन वालुंगयपूली बनाम रामास्वामी (1869) 13 एम.आई.ए. 141 देखे। इसी प्रकार, जहां एक पुरुष और महिला को पति और पत्नी के रूप में एक साथ रहना साबित हुआ है तब कानून मान लेगा, जब तक कि इसके विपरीत स्पष्ट रूप से साबित न हो जाए, कि वे वैध विवाह के परिणामस्वरूप एक साथ रह रहे थे। रखैल की स्थिति में नहीं. (सास्त्री वेलैडर बनाम सेम्बिकट्टी (1881) 6 ए.एसी. 364 डी थोरेन बनाम अटॉर्नी जनरल, (1876) आई.ए.सी. 686 और पियर्स बनाम पियर्स (एल. (2)

एच.एल.सी. 331) देखे। जहां एक विवाह को वैध माना जाता है लंबे समय तक संबंधों, दोस्तों और अन्य लोगों द्वारा इसे अमान्य घोषित नहीं किया जा सकता है। लोखंडे के मामले (सुप्रा) में, इस न्यायालय द्वारा यह गौर किया गया कि "यह तथ्य कि पुरुष और महिला पति और पत्नी के रूप में रहते हैं, यह सामान्य रूप से किसी भी कीमत पर उनका पति और पत्नी का दर्जा नहीं होता है। भले ही वे समाज के सामने खुद को पति और पत्नी के रूप में रखें और समाज उन्हें पति और पत्नी के रूप में मानता है। इस पर्यवेक्षण को सुरजीत कौर बनाम गरजा सिंह और अन्य, ए.इ. 1994 ऐसे.सी. 135 में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था। प्रथम दृष्टया, ऐसा प्रतीत होगा कि ये टिप्पणियाँ ऊपर उल्लिखित निर्णयों की लंबी श्रृंखला के विपरीत हैं। लेकिन उन मामलों के तथ्यों की बारीकी से जांच करने पर यह स्पष्ट है कि यह न्यायालय विचारों से भिन्न नहीं था पहले के मामलों में व्यक्त किया गया। लोखंडे के मामले (सुप्रा) में, यह अदालत द्विविवाह के लिए अभियोजन के मामले से निपट रही थी। अभियोजन पक्ष ने तर्क दिया कि दूसरा विवाह गंधर्व विवाह था और इसमें कोई समारोह आवश्यक नहीं था, इसलिए, यह तर्क नहीं दिया गया, ना ही साबित किया कि कोई पारंपरिक समारोह किया गया था। उस पृष्ठभूमि में, यह माना गया कि गंधर्व विवाह के मामले में भी

समारोह आयोजित किया जाना आवश्यक था। भा.दं.सं. की धारा 494 के तहत द्विविवाह का गठन करने के लिए, दूसरी शादी को विधिवत रूप से संपन्न एक वैध विवाह होना चाहिए और चूंकि ऐसा नहीं थाा, इसलिए कानून की नजर में यह शादी नहीं थी और इसलिए अमान्य थी। द्विविवाह के अपराध का आवश्यक घटक पति या पत्नी के जीवनकाल में फिर से "विवाह करना" है, जो कि धारा 498 ए के आवश्यक तत्वों के विपरीत है, जिसमें अन्य बातों के अलावा, संबंधित महिला को क्रूरता के अधीन करने की परिकल्पना की गई है। भा.दं.सं. की धारा 494 में मुख्य रूप से "शादी" पर जोर दिया गया है, जबकि धारा 498ए में महिला को क्रूरता के अधीन करने पर जोर दिया गया है। इसी तरह, धारा 304बी के तहत अपराध का मुख्य जोर "दहेज मृत्यु" पर है। परिणामस्वरूप, जिस बुराई पर अंकुश लगाने की मांग की गई है वह अपमानजनक कृत्य करने वाले व्यक्तियों से भिन्न और अलग है और अपराध करने वाले व्यक्तियों से संबंधित शब्दों या अभिव्यक्तियों को उदारतापूर्वक समझने में कानून में कोई बाधा नहीं हो सकती है ताकि न केवल वैध रूप से विवाहित को शामिल किया जा सके बल्कि ऐसा कोई भी व्यक्ति जिसने किसी न किसी रूप में विवाह किया हो और इस प्रकार अपने लिए पति का पद ग्रहण किया हो, ताकि वह जीवन

बिता सके, सहवास कर सके और किसी अन्य महिला पर ऐसे पति के रूप में अधिकार का प्रयोग कर सके। चूंकि अभियोजन पक्ष ने गंधर्व विवाह की दलील पेश की थी और समारोहों के आयोजन को साबित करने में विफल रहा था, इसलिए वैध विवाह की धारणा पर पीछे हटना संभव नहीं था। यह भी माना गया कि ऐसी कोई धारणा नहीं थी। व्यक्ति पहले से ही शादीशुदा था। सुरजीत सिंह के मामले (सुप्रा) में आधार रुख यह था कि ''करेवा विवाह'' हुआ था। इस मामले में न्यायालय ने माना कि करेवा विवाह की प्रथा के तहत विधवा, पति के भाई या रिश्तेदार से विवाह कर सकती है लेकिन उस मामले में वह आदमी अजनबी था। इसके अलावा विवाह के उस रूप के तहत भी कुछ समारोह करने की आवश्यकता होती है, जो साबित नहीं हुए थे। अनुमान से संबंधित विवाद से निपटते हुए, लोखंडे के मामले (सुप्रा) का संदर्भ दिया गया। चूंकि पक्षकारों ने विवाह का एक विशेष रूप स्थापित किया था, जो ऐसे विवाह से संबंधित आवश्यक समारोहों करने के सबूत के अभाव के कारण अमान्य हो गया, लंबे समय तक सहवास की धारणा को लागू नहीं किया गया था।

उदाहरण के लिए, किसी मामले में अनुमान उपलब्ध नहीं हो सकता है, जहां आदमी पहले से ही शादीशुदा था या विवाह में कोई बड़ी दुर्गम बाधा

थी, लेकिन दस्तावेजों और आचरण द्वारा मजबूत सबूत होने पर अनुमान उत्पन्न होता है। हिंदू कानून में उपरोक्त स्थिति पर प्रकाश डाला गया है और उपयोग।

इस स्थिति पर मायने द्वारा लिखी पुस्तक हिन्दू विधि उपयोग में प्रकाश डाला गया है। धारा 498ए में 'पति' अभिव्यक्ति के अंतर्गत कौन आएगा, यह प्रश्न समस्याएँ उत्पन्न करता है। शब्द के इतिहास व उत्पत्ति के अध्ययन के अनुसार, विभिन्न कानूनी शब्द संग्रहों शब्दकोशों और शब्दकोशों में दी गई "पति" और "विवाह" की परिभाषा के संदर्भ में - एक वैध विवाह का अस्तित्व प्रतीत हो , वहां दंडात्मक प्रावधान लागू करने के लिए लचिला रूख लागू किया जाना चाहिए। श्रीमती यमुनाबाई अनंतराव अधव बनाम अनंतराव शिवराम आधव और अन्य, ए.आई.. (1988) ऐसे.सी. 644 में एक महिला दंड प्रक्रिया संहिता 1973 से (संक्षेप में 'सी..पी.सी.') की धारा 125 के तहत भरण-पोषण का दावा किया गया। इस न्यायालय ने विवाह अधिनियम के प्रावधान को लागू किया बताया गया कि यह कानून 1955 में लागू हुआ व अधिनियमित किया गया था और धारा 5 अवधारित करती है कि एक वैध विवाह के लिए आवश्यक शर्त है कि विवाह के समय किसी भी पक्ष का जीवनसाथी जीवित नहीं होना चाहिए और इस शर्त के उल्लंघन

में किया गया विवाह अमान्य व वैध है। 'पति' और 'पत्नी' के रिश्ते के लिए विवाह की अवधारणा की सख्त व्याख्या की आवश्यकता हो सकती है जहां नागरिक अधिकारों, संपत्ति के अधिकार आदि के दावे हो

या हो सकते हो और एक उदार दृष्टिकोण और भिन्न धारणा एक अभिशाप नहीं हो सकती है जब प्रश्न एक सामाजिक बुराई पर अंकुश लगाने का संबंध है। दहेज या दहेज की उत्पत्ति का प्रश्न सिद्धांतकारों द्वारा अध्ययन जी का विषय रहा है। मायने का कहना है कि यह पत्नी के परिवार का योगदान या स्वयं पत्नी द्वारा, वैवाहिक घर के खर्चों को वहन करने में पति की सहायता करने का इरादा है (मायने की पुस्तक "समाज का प्रारंभिक इतिहास" पृष्ठ 319 पर) तब दान या दहेज से संबंधित होता था, उस पर उसका अप्रतिबंधित अधिकार था, पत्नी की सभी संपत्ति जो दहेज में शामिल नहीं थी, को उसका "प्रोफ्रा" कहा जाता था और वह उसकी पूर्ण संपत्ति थी जिस पर उसके पति का कोई अधिकार व नियंत्रण नहीं था. (बनर्जी द्वारा लिखित पुस्तक 'विवाह और स्त्रीधन' 345 देखें) प्रतिभा रानी बनाम सूरज कुमार और अन्य, ए.आई. . (1985) ऐसे.सी. 628 स्त्रीधन के इतिहास का देखने के बाद यह माना गया कि पत्नी धारा 27 विवाह अधिनियम के तहत ऐसी

संपत्ति की पूर्ण मालिक है। विवाह के समय या उसके आसपास पति-पत्नी को उपहार स्वरूप दी गई संपत्ति संयुक्त रूप से उनकी होती है।

दहेज निषेध अधिनियम, 1961 (संक्षेप में 'दहेज अधिनियम') दहेज के लगातार बढ़ते खतरे से निपटने के लिए लाया गया था, जिसका घोषित उद्देश्य दहेज लेने और देने पर रोक है। धारा 2 "दहेज" को परिभाषित करती है। धारा 4 "दहेज" की मांग करने पर दंड का प्रावधान करती है, जबकि धारा 5 दहेज देने या लेने के समझौते को अमान्य बनाने वाला एक महत्वपूर्ण प्रावधान है। धारा 6 एक और प्रावधान है जो दहेज लेने व देने की की रोकथाम के लिए वैधानिक चिंता को दर्शाता है। इसमें यह प्रावधान है कि दहेज का हस्तांतरण लंबित रहने तक, दहेज प्राप्त करने वाला व्यक्ति इसे महिला के लाभ के लिए ट्रस्ट में रखता है। 1986 के संशोधन अधिनियम 43 की धारा 2 में संशोधन से प्रावधान को स्पष्ट कर दिया कि "शादी के समय या पहले या बाद में" शब्दों को जोड़ने के मद्देनजर, शादी के बाद की गई मांग दहेज का एक हिस्सा है। (हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम निक्कू राम, ए.आई.. (1996) ऐसे.सी. 67 देखे।)

दहेज अधिनियम की धारा 2 के तहत 'दहेज' शब्द की परिभाषा से पता चलता है कि विवाह के लिए एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को विवाह के

समय, पूर्व व पश्चात विवाह के प्रतिफल के रूप में कोई भी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दी गई या "देने के लिए सहमति" दी गई, हो। दहेज के रूप दहेज अधिनियम के तहत दंडनीय हो जाएगा। इसलिए, दहेज अधिनियम के अर्थ में 'दहेज' के रूप में संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति "विवाह के लिए प्रतिफल के रूप में" दी जानी चाहिए या मांगी जानी चाहिए।

दहेज अधिनियम की धारा 4 का उद्देश्य दोनों पक्षों के बीच "विवाह के प्रतिफल" के रूप में "दहेज" की "मांग" को हतोत्साहित करना है और यह निर्धारित करती है कि यदि अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद कोई भी व्यक्ति, सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से 'दुल्हन' या 'दुल्हन' के माता-पिता या अभिभावकों से मांग करता है, जैसा भी मामला हो, 'दहेज' के लिए कारावास या जुर्माना या दोनों से दंडनीय होगा। इस प्रकार, धारा 4 विवाह के लिए प्रतिफल के रूप में संपत्ति या मूल्यवान प्रतिफल की मांग दंडनीय बनाती है, मांग पूरी होने पर अधिनियम की धारा 3 के तहत गंभीर अपराध होगी, जिसके लिए कठोर कारावास और जुर्माने से दंडित किया जा सकता है, जो पंद्रह हजार रुपये से कम नहीं होगा या ऐसे दहेज के मूल्य की राशि, जो भी अधिक होगा।

अभिव्यक्त 'दहेज' शब्द की परिभाषा धारा 2 में निहित है दहेज अधिनियम को केवल विवाह के समय या उसके बाद की गई धन, संपत्ति या मूल्यवान सुरक्षा की 'मांग' तक सीमित नहीं किया जा सकता है। विधायिका ने 'दहेज' की परिभाषा प्रदान करते समय अपने विवेक से इस बात पर जोर दिया है कि विवाह के समय व उसके पूर्व व पश्चात् विवाह के लिए प्रतिफल के रूप में दिया गया कोई भी धन, संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति 'दहेज' अभिव्यक्ति के अंतर्गत आएगी। और धारा 2 में निहित इस परिभाषा को एक्ट में जहां भी दहेज का अवलोकन हो, पढ़ा जाना चाहिए। अधिनियम में 'दहेज' शब्द का प्रयोग किया गया है, वह आमतौर पर प्रयुक्त और समझी जाने वाली अभिव्यक्त 'दहेज' का अर्थ अधिनियम के तहत इसकी विशिष्ट परिभाषा से भिन्न है। धारा 4 के तहत,

केवल 'दहेज' की मांग किसी आरोपी को अपराध की सजा के लिए पर्याप्त है। इस प्रकार, दुल्हन या उसके माता-पिता या अन्य से की गई धन, संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति की कोई भी 'मांग' अधिनियम के तहत 'दहेज' की कुप्रथा के अंतर्गत आएगी। जहां ऐसी मांग किसी कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त दावे के लिए पर्याप्त रूप से संदर्भित नहीं है और केवल विवाह के प्रतिफल से संबंधित है इस संदर्भ में विवाह में प्रस्तावित विवाह भी शामिल

होगा, जहां विशेष रूप से "दहेज की मांग" की पूर्ति न होने पर विवाह न हो पाना कुरूप परिणाम होता है। दहेज अधिनियम के तहत अभिव्यक्ति "दहेज" की व्याख्या उसी अर्थ में की जानी चाहिए जो क़ानून इसे निर्दिष्ट करना चाहता है। क़ानून में दी गई परिभाषा निर्धारक तथ्य है। दहेज अधिनियम सामाजिक कानून का एक हिस्सा है जिसका उद्देश्य दहेज की सामाजिक बुराई के बढ़ते खतरे को रोकना है और यह न केवल दहेज प्राप्त करने को दंडनीय बनाता है बल्कि विवाह को भी दंडनीय बनाता है जहां ऐसी मांग विवाह के प्रतिफल के लिए संदर्भित होती है। विवाह के प्रतिफल स्वरूप दहेज देना प्रतिबंधित है, न कि दोस्तों और रिश्तेदारों द्वारा दूल्हे या दुल्हन को पारंपरिक उपहार देना। इस प्रकार, दूल्हा या दुल्हन को, जैसा भी मामला हो, विवाह के समय, पूर्व व पश्चात दिये जाने वाले स्वैच्छिक उपहार पारंपरिक प्रकृति के, जो प्रेम, लगाव व सम्मान स्वरूप विवाह के प्रतिफल रूप में नहीं दिये गये हैं, दहेज अधिनियम के तहत दण्डनीय दहेज में नहीं आते हैं। हिंदुओं ने विवाह के 8 रूपों को मान्यता दी, जिनमें से चार को मंजूरी दी गई, अर्थात् ब्रह्मा, दैव, अर्ष और प्रजापत्य। विवाह के अस्वीकृत रूप गंधर्व, असुर, राक्षस और पिशाच थे। ब्रह्म विवाह में पिता/अभिभावक जैसी भी स्थिति हो, कुछ राशि खर्च करनी पड़ती थी। अंततः जीवनसाथी के पास

जानी थी। इसी से दहेज की उत्पत्ति हो सकती है जो नकद या वस्तु के रूप में हो सकती है।

"दहेज" की अवधारणा कभी-कभी विवाह से जुड़ी होती है और दहेज अधिनियम के प्रावधान विवाह के संबंध में लागू होते हैं। यदि विवाह की वैधता का प्रश्न,

प्रश्नगत है तो, इसके अलावा कानूनी समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं। यदि विवाह की वैधता स्वयं कानूनी जांच के अधीन है, तो अमान्य विवाह के संबंध में दहेज की मांग को कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त नहीं होगी। फिर भी जिस उद्देश्य के लिए धारा 498 ए और 304 बी- भा.दं.सं. और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113 बी (संक्षेप में 'साक्ष्य अधिनियम') को लाया गया, उसे नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता है। केवल पांडित्यपूर्ण या अति तकनीकी रूप से नहीं वरन, कुछ जनता पर अंकुश लगाने और उन्हें राहत देने के लिए कुछ नीति के साथ अधिनियमित कानून, समाज में व्याप्त बुराई और एक निश्चित सार्वजनिक उद्देश्य या लाभ को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने के लिए यथार्थवाद के कुछ तत्वों के साथ उनकी व्याख्या की जानी चाहिए, इसका स्पष्ट उद्देश्य उस महिला को उत्पीड़न से बचाना था जो किसी व्यक्ति के साथ वैवाहिक संबंध में प्रवेश करती है और बाद में, पैसे के

लालच का शिकार हो जाती है। क्या वैवाहिक व्यवस्था में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को यह तर्क देने के लिए धुम्रावरण के पीछे आश्रय लेने की अनुमति दी जा सकती है कि चूंकि कोई वैध विवाह नहीं हुआ था, इसलिए दहेज का सवाल ही नहीं उठता है। ऐसी कानूनी व्यवस्था की बारीकियां प्रावधानों के उद्देश्य को नष्ट कर देंगी। ऐसे में छिद्रान्वेषित कानूनी दृष्टिकोण से पैसे की मांग पर एक महिला के उत्पीड़न को बढ़ावा मिलेगा। 'दहेज' के नामकरण पर कोई जादुई आकर्षण नहीं है। यह वैवाहिक संबंधों के संबंध में पैसे की मांग को दिया गया एक लेबल मात्र है। विधायी मंशा इस तथ्य से स्पष्ट है कि केवल पति ही नहीं बल्कि उसके रिश्तेदार भी धारा 498ए के अंतर्गत आते हैं। विधानमंडल ने अवैध विवाह से पैदा हुए बच्चों की देखभाल की है। विवाह अधिनियम की धारा 16 शून्य और शून्यकरणीय विवाहों के बच्चों की वैधता से संबंधित है। क्या यह कहा जा सकता है कि विधायिका जो शून्य और शून्य विवाह से बच्चों से जुड़े सामाजिक कलंक के प्रति सचेत थी, उसने एक महिला की दुर्दशा के प्रति आँखें बंद कर लीं। जो अनजाने में या कानूनी परिणामों से अनभिज्ञ होकर वैवाहिक संबंध में प्रवेश करती है। यदि ऐसा प्रतिबंधित अर्थ दिया जाता है, तो यह विधायी मंशा को आगे नहीं बढ़ाएगा। इसके विपरीत, यह विवाह के संबंध में धन की मांग को लेकर

किसी महिला को उत्पीड़न से बचाने के लिए विधायिका द्वारा दिखाई गई चिंता के विरुद्ध होगा।

धारा 494 के पहले अपवाद की भी कुछ प्रासंगिकता है। इसके अनुसार, द्विविवाह का अपराध "किसी भी ऐसे व्यक्ति पर लागू नहीं होगा जिसका ऐसे पति या पत्नी के साथ विवाह सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा शून्य घोषित किया गया हो"। "पति" शब्द का अर्थ ऐसे व्यक्ति को लगाना उचित होगा जो वैवाहिक संबंध में प्रवेश करता है और पति की ऐसी घोषित या नकली स्थिति के तहत संबंधित महिला के साथ क्रूरता करता है या किसी भी तरीके से या किसी भी उद्देश्य के लिए उसके साथ जबरदस्ती करता है। प्रासंगिक प्रावधान धारा 3048/498 ए में उल्लिखित, धारा 498 ए और 304 बी भा.दं.सं. के सीमित उद्देश्य के लिए विवाह की वैधता जो भी हो। इस तरह की व्याख्या, जिसे उद्देश्यपूर्ण निर्माण के रूप में जाना और मान्यता प्राप्त है को, इस प्रकृति के मामले में काम में आना होगा। विशेष रूप से ऐसे व्यक्तियों को शामिल करने के लिए 'पति' की परिभाषा का अभाव जो 'पति' के रूप में अपनी भूमिका और स्थिति के कथित अभ्यास में एक दृश्यमान अनुबंध विवाह करता है और ऐसी महिला के साथ सहवास करता है, उन्हें भा.दं.सं. की धारा 304 बी या 498 ए के दायरे से बाहर करने का

कोई आधार नहीं है, बहुत ही बड़े उद्देश्य और लक्ष्य के लिए व्यवस्थापिका ने इन प्रावधानों को लागू किया है।

ए.पी. के मुख्य न्यायाधीश बनाम एल.वी.ए. दीक्षितुलु, [1979] 2 ऐसे.सी.सी. 34 में इस न्यायालय ने देखा:

"व्याख्या का प्राथमिक सिद्धांत यह है कि एक संवैधानिक या वैधानिक प्रावधान का अर्थ "उनके इरादे के अनुसार" लगाया जाना चाहिए। कोक आम तौर पर, ऐसा इरादा प्रावधान की भाषा से इकट्ठा किया जाता है। यदि भाषा या वाक्यांशविज्ञान कानून द्वारा नियोजित सटीक और स्पष्ट है और इस प्रकार अपने आप में स्पष्ट शब्दों में विधायी इरादे की घोषणा करता है, तो परिणाम की परवाह किए बिना इसे प्रभावी किया जाना चाहिए। लेकिन अगर प्रावधान में इस्तेमाल किए गए शब्द पत्रावली अस्पष्ट, या विचारोत्तेजक हैं या तर्कसंगत रूप से एक से अधिक अर्थ रखने वाला है, तो सख्त व्याकरणिक निर्माण का नियम वास्तविक विधायी इरादे तक पहुंचने के लिए एक निश्चित मार्गदर्शक नहीं रह जाता है।

ऐसे मामले में, नियोजित शब्दों और वाक्यांशों के सही अर्थ का पता लगाने के लिए, यह आवश्यक है कि न्यायालय के लिए प्रावधान की शुष्क शाब्दिक सीमाओं से परे जाना और निर्माण के अन्य अच्छी तरह से

मान्यता प्राप्त नियमों, जैसे कि इसका विधायी इतिहास, मूल योजना और समग्र रूप से क़ानून की रूपरेखा, प्रत्येक भाग पर प्रकाश डालना, कानून का उद्देश्य, प्राप्त की जाने वाली वस्तु, और परिणाम जो किसी अन्य संभावित व्याख्या की प्राथमिकता में अपनाने से उत्पन्न हो सकते हैं को सहायता के लिए देखना वैध है।

केहर सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) ए.आई.. (1988) ऐसे.सी. 1883 में इस न्यायालय ने अभिनिश्चित किया कि

"...लेकिन, यदि शब्द अस्पष्ट, अनिश्चित हैं या प्रयुक्त शब्दों के बारे में कोई संदेह उत्पन्न होता है, तो हम विधायिका की भाषा में तर्कसंगत अर्थ रखना अपना सर्वोपरि कर्तव्य मानते हैं। फिर हम हर शब्द, हर खंड और हर प्रावधान समग्र रूप से अधिनियम की जांच करते हैं। हम उस आवश्यकता की जांच करते हैं जिसने अधिनियम को जन्म दिया। हम उप कुरूतियों को देखते हैं जिनका निवारण विधायिका करना चाहती थी। हम केवल एकाएक संबंध को नहीं वरन् पूरी स्थिति को देखते हैं, हम क़ानून के ढांचे से बाहर किसी भी प्रावधान पर विचार नहीं करेंगे। हम प्रावधानों को पीछे के मकसद से अलग किए गए अमूर्त सिद्धांतों के रूप में नहीं देखेंगे। हम प्रावधानों पर विचार करेंगे। वे परिस्थितियाँ जिनसे उनकी उत्पत्ति हुई है। हम कानून के

भीतर संपूर्ण और अवांछनीय परिणामों से बचने के लिए सुसंगतता और स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए प्रावधानों पर विचार करेंगे।

जिला खनन अधिकारी बनाम टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी, जेटी (2001) 6 ऐसे.सी. 183 इस न्यायालय ने अभिकथित किया:

"यह कानून मुख्य रूप से अतीत और वर्तमान अनुभव से प्राप्त जानकारी के आधार पर विधायिका के समक्ष समस्याओं के लिए निर्देशित है। इसे भविष्य में उत्पन्न होने वाली समान समस्याओं का निराकरण करने के लिए सामान्य शब्दों के उपयोग द्वारा भी बनाया जा सकता है लेकिन मूल की प्रकृति से भविष्य में उत्पन्न होने वाली विभिन्न स्थितियों का पूरी तरह से अनुमान लगाना असंभव है, जिसमें हस्तगत कानून के आवेदन को करने के लिए चुने गए शब्दों के अनिश्चित संदर्भ कई मामलों में होता है, जिनमें उदारता और सटीकता की कमी होती है इस प्रकार विवादग्रस्त प्रश्नों के निर्माण में वृद्धि होती है । विवादग्रस्त प्रश्न, निर्माण की प्रक्रिया शाब्दिक और उद्देश्यपूर्ण दोनों दृष्टिकोणों को जोड़ती है। दूसरे शब्दों में, विधायी मंशा यानी किसी अधिनियम का सही या कानूनी अर्थ अधिनियम में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ पर विचार करके प्राप्त किया जाता है। कोई भी स्पष्ट उद्देश्य या वस्तु

जो उस बुराई और उसके उपाय को समझती है जिसके लिए अधिनियम को निर्देशित किया गया है"।

हेडन के मामले 3 सह प्रतिनिधि 7ए 76 ई. . 637 में बुराइर् दमन के नियम को अमर बना दिया गया। उसे काम में लिया जा सकता है। यदि शाब्दिक नियम को उदाहरण के लिए काम में लेने की अनुमति दी जाती तो जो बुराई सामने आती, उसे दबाने की दृष्टि से, इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में हेडन का नियम लागू किया गया है, बंगाल इम्यूनिटी कंपनी लिमिटेड, बनाम बिहार राज्य और अन्य, ए.आई. (1955) ऐसे.सी. 661, गुडइयर इंडिया लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, ए.आई. (1990) ऐसे.सी. 781, पी.ई.के. कल्लियानी अम्मा और अन्य बनाम के. देवी और अन्य, ए.आई. (1996) ऐसे.सी. 1963 अमीर ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन लिमिटेड, बनाम शापोरजी डेटा प्रोसेसिंग लिड, (2003) 8 सुप्रीम 634

ऊपर व्यक्त दृष्टिकोण के विपरीत दृष्टिकोण अपनाने वाले उच्च न्यायालयों के निर्णयों को कानून की सही स्थिति निर्धारित करने वाला नहीं माना जा सकता है।

भारतीय रिज़र्व बैंक आदि बनाम पीयरलेस जनरल फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड और अन्य आदि, [1987] । ऐसे.सी.सी. 424

एक क़ानून की व्याख्या के सवाल से निपटते समय, इस न्यायालय ने कहा: "व्याख्या मूल पाठ और ढांचे पर निर्भर होनी चाहिए।

"व्याख्या के आधार पर कोई यह कह सकता है कि यदि मूल पाठ बनावट है, तो ढांचा वह है, जो रंग देता है। किसी को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। दोनों महत्वपूर्ण हैं। वह व्याख्या सर्वोत्तम है जो मूल पाठ को प्रसंगानुकूल बनाती है। किसी विधायन की सबसे अच्छी व्याख्या तब होती है जब हम जानते हैं कि इसे क्यों बनाया गया। इस ज्ञान के साथ, क़ानून को पहले समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और फिर खंड दर खंड, वाक्यांश दर वाक्यांश और शब्द दर शब्द पढ़ा जाना चाहिए। यदि किसी क़ानून को उसके अधिनियमन के संदर्भ में देखा जाता है, तो क़ानून-निर्माता के चश्मे से, ऐसे संदर्भ द्वारा प्रदान किए गए, इसकी योजना, अनुभाग, खंड, वाक्यांश और शब्द रंग ले सकते हैं और संदर्भ द्वारा प्रदान किए गए चश्मे के बिना क़ानून को देखने से भिन्न दिखाई दे सकते हैं। इस चश्मे से हमें अधिनियम को समग्र रूप से देखना चाहिए और पता लगाना चाहिए कि प्रत्येक अनुभाग, प्रत्येक खंड, प्रत्येक वाक्यांश और प्रत्येक शब्द का क्या मतलब है और क्या कहने के लिए डिज़ाइन किया गया है जो पूरे अधिनियम की योजना में फिट बैठता है। किसी क़ानून के किसी भी भाग

और किसी क़ानून के किसी भी शब्द को अलग करके नहीं समझा जा सकता। क़ानूनों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि हर शब्द का अपना स्थान हो और हर चीज़ अपनी जगह पर हो।"

सीफोर्ड कोर्ट ऐस्टेट्स लिमिटेड बनाम आशेर (1949) 2 सभी ई. . 155 (सी.ए) में लॉर्ड डेनिंग ने किसी क़ानून में प्रयुक्त शब्द की व्याख्या के लिए एक उद्देश्यपूर्ण दृष्टिकोण की सलाह दी।

"अंग्रेजी भाषा गणितीय परिशुद्धता का साधन नहीं है। यदि ऐसा होता तो हमारा साहित्य बहुत तुच्छ होता। यहीं पर संसद के अधिनियमों के प्रारूपकारों की अक्सर अनुचित आलोचना की गई है। एक न्यायाधीश, खुद को कथित नियम से बंधा हुआ मानता है कि उसे भाषा को देखना चाहिए और कुछ नहीं, इस बात पर अफसोस जताता है कि मसौदा तैयार करने वालों ने यह या वह प्रदान नहीं किया है, या कुछ या अन्य अस्पष्टता का दोषी है। यह निश्चित रूप से न्यायाधीशों की परेशानी से बचाएगा यदि संसद के अधिनियमों को पूर्ण स्पष्टता दैवीय विवेक के साथ तैयार किया गया था। इसके अभाव में, जब कोई दोष प्रकट होता है, तो एक न्यायाधीश आसानी से अपने हाथ समेटकर प्रारूप तैयार करता तो दोषी नहीं ठहरा सकता है। उसे कानून की भाषा, संसद के इरादे को जानने के रचनात्मक कार्य पर

काम करना चाहिए, और उसे यह काम न केवल करना चाहिए, साथ ही उन सामाजिक परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए, जिन्होंने इसे जन्म दिया और उस बुराई के बारे में, जिसे ठीक करने के लिए इसे पारित किया गया था, और फिर उसे लिखित शब्द की पूर्ति करनी चाहिए। ताकि उसे 'बल और जीवन' दिया जा सके। विधायिका की मंशा... एक न्यायाधीश को खुद से यह सवाल पूछना चाहिए कि, यदि अधिनियम के निर्माताओं को स्वयं इसकी इस बनावट में इस गड़बड़ी का पता चला होता, तो उन्होंने इसे कैसे सीधा किया होता? फिर उसे वैसा ही करना होगा जैसा उन्होंने किया होगा। एक न्यायाधीश को इसमें परिवर्तन नहीं करना चाहिए जिस सामग्री से अधिनियम बनाया गया है, लेकिन उसे परेशानियों व असहमतियों को खत्म व समाप्त करना चाहिए।"

(जोर देने के लिए रेखांकित)

इन पहलुओं को इस न्यायालय द्वारा ऐसे. गोपाल रेड्डी बनाम ए.पी. राज्य, [1996] 4 ऐसे.सी.सी. 596 में उजागर किया गया था।

अपराध बनता है या नहीं, यह परीक्षण का विषय है। उच्च न्यायालय द्वारा अपील की अनुमति देने के आवेदन को सरसरी तौर पर खारिज करना उचित नहीं था। जब वह अपील की अनुमति से इनकार करता है तो उसका कारण

बताना उसका कर्तव्य है। कोई भी अनौपचारिक/असामयिक या संक्षिप्त निस्तारण उचित नहीं होगा। (पंजाब राज्य बनाम भाग सिंह, (2003) और सुप्रीम 611 देखें। इन परिस्थितियों में, हम उच्च न्यायालय के विवादित आदेश को रद्द करते हैं और हमारे अनुसार मामले को गुण-दोष के आधार पर निपटाने के लिए मामले को वापस उच्च न्यायालय में भेजते हैं। इसमें शामिल बिंदुओं पर उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय की आवश्यकता है। अपील को संकेतित सीमा तक अनुमति दी गई है।

अपील की अनुमति।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी कुमकुम - (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा मे समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा मे अनुवादित किया गया है और अन्य उददेश्य के लिए इसका उपयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उददेश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उददेश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।